'Research Journey' International Multidisciplinary E- Research Journal
Global Impact Factor – 0.565 (2014) & 0.676 (2015) Vol. 2 Issue. 4
ISSN :2348-7143 (Online)
Oct. - Dec.- 2015

हिंदी ग़ज़लों का सामाजिक परिदृश्य

डॉ. रेखा गाजरे
सहयोगी प्राध्यापक, अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
भुसावल कला, विज्ञान एवं पु.ओं. नाहाटावाणिज्य महाविद्यालय,
भुसावल, जिला. जलगॉव
महाराष्ट्र
भ्रमणध्वनि - ९४२३९७४३१०

साहित्य सृजन का प्रेरक एवं पोषक तत्व समाज है। साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज के सुखदुखात्मक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। और उसे साहित्य में अभिव्यक्त करता है। जहॉ एक ओर समाज साहित्य को प्रेरित एवं प्रभावित करता है वहीं दूसरी ओर समाज भी साहित्य से प्रेरणा एवं प्रभाव प्राप्त करता है। वास्तव में साहित्य समाज की अनुभूतियों, आशा-आकाक्षांओं सुख-दुखों, वेदनाओं और साहित्यिक मूल्यों का मार्मिक वितरण होता है। डॉ. कमला प्रसाद पाण्डेय का अभिमत है कि "विश्व के किसी भी साहित्य का जन्म उस देश के समाज की आवश्यकताओं का प्रतिफल है। साहित्य के इतिहास के विभिन्न युग, युग विशेष के ही संदर्भ हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिककाल साहित्य के युग है। इन सभी युगों की प्रेरणा भूमि समाज ही रही है।"[१] साहित्य समाज का केवल दर्पण ही नहीं है एक दीपस्तंभ भी है, एक नवीन सृष्टि है। साहित्यकार सामाजिक होने के कारण अपने समाज का चित्रण करता है। प्रत्येक युग के अपने सामाजिक संदर्भ होते हैं। सामाजिकता से प्रेरित साहित्य अमरत्व ग्रहण करता है क्योंकि उसमें सामाजिक बोध होता है। समष्टि रूप में साहित्य मानवता का दर्पण है।

साहित्य और समाज दोनों का उद्देश्य एक ही है। साहित्य व्यष्टि और समष्टि के कल्याण को प्रमुखता देता है। क्योंकि उसमें 'सहित' का भाव है। साहित्य समष्टि कल्याण का पुरस्कार करता है, यह मानव कल्याण का सच्चा प्रेरक और प्रामाणिक रक्षक होता है। कल्याण की इसी स्पृहा ने मानव को सामाजिकता से संबंधित किया है। व्यक्ति के जीवन का एक सामाजिक पक्ष भी होता है। इसी कारण साहित्य व्यष्टि एवं समष्टि का केन्द्र माना जाता है। साहित्यकार के समक्ष व्यक्ति नहीं समाज होता है, वह जनसामान्य से अधिक संवेदनशील एवं प्रतीभाशाली होने के कारण समाज की परिस्थितियों से निरंतर प्रभावित होता है। और उसे साहित्य में अभिव्यक्त करता है। इसीलिए कहा जाता है कि साहित्य-संसार के प्रति साहित्यकार की मानसिक प्रतिक्रिया उसके भावों विचारों की अभिव्यक्ति है। जो समाज जितना समुन्नत होगा उसका साहित्य भी उतना ही उन्नत होगा। साहित्यकार की विशेषता यह है कि वह अपने समाज का मस्तिष्क और मुख दोनों होता है। साहित्यकार को समाज के भावों और विचारों को सजीव एवं प्रभावशाली बनाकर व्यक्त होना होता है। साहित्यकार का एक सामाजिक उद्देश्य है समाज की परख। और समाज के साथ एकात्म हुए बिना सामाजिक संप्रेषण नहीं हो सकता।

हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में ग़ज़ल अत्यंत संवेदनशील विधा है। साहित्यकार संवेदनशील होने के कारण समाज के दु:ख-दर्द से प्रभावित होता है और यही प्रभाव उसकी अभिव्यक्ति है। हिंदी ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा और सामाजिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्फुटित हुआ है। ग़ज़ल की सामाजिकता स्पष्ट

करते हुए ग़ज़लकार माधव कौशिक ने लिखा हैं "ग़ज़ल के निरंतर विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि समकालीन समाज के तमाम अंतर्विरोधों व संकटपूर्ण स्थितियों को इस विधा के माध्यम से बखूबी बयान किया जा सकता है। सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के साथ-साथ मानवमन की गहनतम भावनाओं को अभिव्यक्त करने तथा सूक्ष्म संवेदनाओं को वाणी प्रदान करने की अपार क्षमता और सामर्थ्य इस काव्य विधा में खूब है।"[२] यह तो स्वीकार करना ही होगा कि हिंदी ग़ज़ल संवेदनाओं की ज़मीन है। इस ज़मीन से जुड़े सामाजिक संदर्भ-संघर्ष, सामाजिक स्थितियॉं, ग़ज़ल के विषय रहे हैं। ग़ज़ल की एक और विशेषता यह है कि वह सामाजिक यथार्थ से सम्पृक्त है। सच्चाई ग़ज़ल का मूल भाव है। ग़ज़लकारों के अपने दौर में जो सामाजिक परिदृश्य उभर रहे हैं उन्हें गहराई से झॉंककर उसकी अभिव्यक्ति ग़ज़ल का मूल स्वर है। इस संदर्भ में डॉ उर्मिलेश मानते है कि आज की हिंदी ग़ज़ल व्यक्ति और समाज को व्याख्या देने वाली काव्य विधा है। ग़ज़लों की सामाजिक प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हुए ज्ञानप्रकाश विवेक लिखते हैं - "यह समय अंतर्विरोधों, जटिलताओं और संबंधों के स्खलन का है, पुरानी मान्यताएँ, पुराने केन्द्र ढह रहे हैं। नये मूल्य, समाज को नया स्थापत्य दे रहे हैं। वे मूल्य बेशक बाज़ारवादी संस्कृति से छनकर आये हैं, और ये मूल्य वस्तुतः बेचैनी पैदा कर रहे हैं समाज में जो अंतर्विरोध दिखाई देते हैं, कहीं न कहीं उन बनते बिगडते मूल्यों के कारण भी है। कवि समाज की इकाई होता है और वह आम लोगों से कहीं अधिक सूक्ष्मता से जीवन की बदलती स्थितियों का मूल्यांकन करता हैं।"[३]

फारसी-उर्दू की ग़ज़ल परंपरा से हिंदी की ग़ज़ल का तेवर भिन्न हो गया है। जैसा कि डॉ. बशीर ने लिखा है 'ग़ज़ल अब तक शराब पीती थी, नीम का रस पिला रहे है हम।' नीम के रस से तात्पर्य है व्यष्टि-समष्टिगत जीवन की सच्चाई। ग़ज़लकारों की चिंताएँ निजी न होकर समाज विषयक हैं। इसलिए ग़ज़ल के पात्र समाज का वह निरिह प्राणी है जिसकी आवाज़ बेअसर हो चुकी है जो समाज में 'आम आदमी' के रूप में स्थापित है। हिंदी ग़ज़ल के शिखर पुरूष दुष्यंत कुमार ने इस आम आदमी को अपना प्रमुख पात्र बनाते हुए उसके संघर्ष को, उसके टूटती-बिखरती उम्मीदों को, उसके मन को, उसमें परिव्याप्त निराशा, उसके संशय, उसकी भूख को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाया हैं। दुष्यंत में इस समाज को देखकर संवेदना जागृत होती है, समाज की स्थिति को देखकर तकलिफ होती है। ग़ज़ल के कथ्य के विषय में उनका दृष्टिकोण है कि 'जो दृश्य सामने है, वह जो सामने होना चाहिए, उसकी जरूरत समाज का जुझता और टूटता हुआ रूप, राजनीति और राजनीतिज्ञों का मूल्क और समाज के साथ सुलूक, अवाम की जिंदगी, जरूरतें और उसके खतरें इन सबकों मैंने ग़ज़लों में बॉंधा है। अतएव दुष्यंत ने समाजी और सियासी विसंगतियों को, विद्रुपताओं को, विडंबनाओं को करिने और सलिके से ग़ज़लों में प्रस्तुत किया है। उनकी ग़ज़लें संवेदनशील पाठक को तीक्ष्ण चुभन देती है। जब वे किसी भूखे को दृष्टिकेन्द्र में रखकर लिखते हैं -

भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ
आजकल दिल्ली में ज़ेरे बहस ये मुद्दआ
सिर्फ हंगामा खडा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए

इसमें समाजी और सियासी स्थिति पर व्यंग्य किया है साथ ही ग़ज़ल का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है यही समाज सापेक्षता दुष्यंत की विशेषता है। इसलिए समाज की स्थिति को देखकर वे मौनव्रती नहीं हो सकते। मुखर होकर लिखते हैं –

मुझमें रहते हैं करोड़ो लोग चुप कैसे रहूँ
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम पर एक बयान है

दुष्यंत कुमार जब यह लिखते है कि मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ तब उनकी प्रतिबद्धता आज के मनुष्य, आज के समाज के प्रति लक्षित होती है। वर्तमान समाज में गरीबी भयंकर रूप में व्याप्त है। आर्थिक विषमता ने आम आदमी का जीवन विषाक्त बना दिया है। उससका शोषण भयावह है। और यह स्थिति पूरे भारत की है। जहाँ असंख्य लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं – अन्न, वस्त्र एवं निवास से वंचित हैं। भारत की सही-सही तस्वीर इन पंक्तियों में व्यक्त हुई हैं–

कल नुमाईश में मिला वो चिथड़े पहने हुए
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है

संतोष कुमार तिवारी लिखते हैं "दुष्यंत कुमार समाज के उस वर्ग विशेष के चरित्र को अच्छी तरह पहचानता है जो खून बहाने की स्थिति में तटस्थ बनकर बैठ जाते है। और समय आनेपर दुाकनें लगाकर बैठ जाते हैं।"[४] इसकी साक्ष्य देता दुष्यंत का यह शेर द्रष्टव्य हैं–

दुकानदार तो मेले में लूट गये यारों
तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गये

दुष्यंत की इस ग़ज़ल से यही स्पष्ट होता है कि समसामयिक युग में ग़ज़ल दरबारीपन से घरबारीपन की ओर जा रही है। वह महफिलों से निकलकर जन चेतना से सम्पृक्त हो रही है यह बदलाव सामाजिक जरूरतों की तहत है। आज की ग़ज़ल की व्यापक, सशक्त, ज्वलंत विशेषता है –सामाजिकत। समाज के दर्द को उभारना, उसके कारणों की मिमांसा करना ग़ज़ल की सार्थकता है।

सम्प्रति, समाज में नैतिक और सामाजिक मूल्यों का पतन सर्वत्र दृष्टिगत हो रहा है। पारिवारिक नाते-रिश्तें स्वार्थ के कारण समाप्त हो रहे हैं। मनुष्य संवेदनाहीन होने के कारण, समाज की उपेक्षा कर रहा है। समाज में स्थित सांस्कृतिक मूल्य, पारस्पारिक प्रेम भाव, सहानुभूति, संवेदना, त्याग, आदर्श न जाने कहाँ खो गये हैं। आज समाज में कतिपय लोग 'ईंट का जवाब पत्थर से देने में विश्वास रखते हैं। यह मानसिकता स्वस्थ समाज के लिए हितकारक नहीं है। यह निर्विवाद सत्य है कि आज का ग़ज़लकार ग़ज़लों को सामाजिक संदर्भों से सम्पृक्त कर रहा है इसलिए आज की ग़ज़ल में प्रेम, संयोग, वियोग पीड़ा नहीं है बल्कि सामाजिक जीवन व्यापक धरातल पर दृष्टिगत होता है। जहीर कुरेशी एक ऐसे ग़ज़लकार हैं जिनकी अधिकांश ग़ज़लें सामाजिक सरोकार से सराबोर हैं। उनकी मान्यता है कि समाज में जिन्हें रोजी रोटी की समस्या हैं उनकी आवश्यकताएँ भी सीमित होती है और यही भारत की तस्वीर हैं–

दो रोटी के अलावा चार की बातें नहीं करते
करोडों लोग कोठी कार की बातें नहीं करते

पीढ़ी अंतराल के कारण दो पीढ़ियों के विचारों में भी अंतराल परिलक्षित होने लगा है। पुत्र इतना स्वार्थी हो गया है कि उसके स्वर में अहंकार आ गया है। मानवमूल्यों के पतन के कारण वृद्धावस्था को एक बोझ माना जाता है। इस सामाजिक विकृति को रेखांकित करते हुए कुरेशी लिखते हैं-

जब से अफसर बना बड़ा बेटा
झुक गया है पिता का 'स्वर' घर में
हमारे बच्चे अगर पूछते नहीं हमको
हम उस तरह भी निःसंतान होते जाते हैं
बोझ का पर्बत है बूढ़ा बाप बच्चों के लिए
झिड़कियाँ मिलती हैं उसको रोज आदर की जगह

सामाजिक विसंगतियों और समाज के विद्रूप चेहरे को सबके सामने लाने के लिए जिस धैर्य की आवश्यकता होती है वह जहीर जी के पास है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति के लिए समाज इससलिए आवश्यक है कि उसका जीवन आनंददायी बन सके।

अब किसे अपना कहें, किस द्वार पर आवाज़ दे,
दोस्त रिश्तें, फूल सब कॉटों के बिस्तर हो गये।

आज का मनुष्य मुखौटे धारण कर जी रहा है। उसने एक नया चेहरा ओढ लिया है जिसने असली चेहरे को दबा दिया है। बाहर से वह सुखी दृष्टिगत होता है परंतु उसका अंतरमन दुखी है, तनावपूर्ण है। जैसा कि ग़ज़लकार ने लिखा है-

ऊपर से छूने पर तो मखमल है चेहरें,
अंदर से कुंठाओं के मरूस्थल हैं चेहरें।

तो दूसरी ओर समाज में ऐसे स्वार्थी लोग हैं जो बाहर से सभ्य दिखाई देते हैं परंतु वास्तव में वो भेड़िये हैं। इसी कारण समाज में हादसे हो रहे हैं। समाज का यह वर्ग अपने बाहुबल से आतंक फैलाए रहता है। प्रतिदिन हत्या, मारपीट, अत्याचार, बलात्कार के समाचार पाठकों को व्यथित करते हैं। इस स्थिति पर जहीर कुरेशी ने लिखा हैं -

शरीफों के मुखौटों में छिपे हैं भेड़िए कितने,
हमारे सामने ही हो रहे हैं हादसे कितने।

और आश्चर्य तो यह है कि कई लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए असामाजिक तत्वों से संपर्क बनाएँ रखते हैं। और पूंजीपति वर्ग एवं राजनीतिज्ञ ऐसे लोगों से मित्रता बनाए रखता हैं। यही कारण हैं कि समाज में गुंडाराज व्याप्त हो चुका है -

लोग अपने स्वार्थ, अपने लाभ के खातिर,
भेडियों से प्यार करना सीख जाते हैं।

समाज की स्थिति यह है कि मारपीट, लूटमार, अपहरण, बलात्कार जैसी दुर्घटनाएँ दिन दहाड़े हो रही हैं और लोग इन घटनाओं को देखकर मौन बने रहते हैं क्योंकि इन घटनाओं के पीछे गुंडाराज क्रियाशील है -

दिन-दहाडे. 'रैप', 'हत्याकाण्ड', 'डाके',
आजकल सड़कें ये मंजर देखती हैं।

जुल्म के साथ नाचती सड़के,
होठ सिलते रहे चलते-चलते।

समाज में मानवी मूल्य जैसे प्रेम, सहानुभूति विश्वास नष्ट हो रहे हैं। स्वार्थ मनुष्य के जीवन पर इतना हावी हो चुका हैं कि समाज में पारस्पारिक प्रेम के स्थान पर संदेह ने जन्म लिया है-

हमारे बीच संशय बढ़ रहे हैं,
उसी अनुपात में भय बढ़ रहे हैं।

स्पष्ट है कि जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में समाज सम्पृक्तता है, सामाजिक चेतना परिव्याप्त है। मानवी मूल्यों के विघटन की चिंता है।

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' ने समाज में व्याप्त गरीबी देखी है और ग़ज़ल कार जो देखता है उसे वाणी देता है। उनकी ग़ज़लों में उनकी वैयक्तिक अनुभूति सर्वत्र वद्यमान है यही कारण है कि उनकी अनुभूति अभिव्यक्ति के बहुत समीप दिखाई देती है। आज भारत की तस्वीर यह है कि पूरे देश में निर्धन समाज में दिन-प्रतिदिन संख्यात्मक वृद्धि हो रही है। रोजी-रोटी की समस्या से समाज व्यथित है। समाज की सबसे बड़ी समस्या रोटी है, भूख है। रोटी के संदर्भ में ग़ज़लकारों द्वारा लिखे गये शेर बिहारी के दोहों की तरह 'देखन में छोटे लागें, घाव करें गम्भीर' की याद दिलाते हैं। इस स्थिति को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं-

तुम समझ जाओगे क्या चीज है भारतमाता,
तुमने बेटी किसी निर्धन की अगर देखी हो।
अपने शहर में उस दिन मैंने भूख का ये आलम देखा,
दूध के बदले इक माँ के आँचल से खून टपकता था।

गुलज़ार भूख की समस्या को प्रतिकात्मक शब्दों में प्रकट करते हैं -

माँ ने जब चाँद-सी दुलहन की दुआ दी थी,
वह रात भर चाँद को तवे पर सेंकता रहा।

ज्ञानप्रकाश विवेक के विचारों की मर्मस्पर्शी अनुगूंज इन शब्दों में व्यक्त हुई हैं-

उस भूखे आदमी का तब दर्द मैंने जाना,
जब गोल चाँद को भी रोटी-सा उसने माना।

रोटी के लिए संघर्ष करते-करते मनुष्य इतना उलझ गया है कि उसे जीवन के किसी अन्य पक्ष पर ध्यान देने की भी सुध नहीं है और न ही आनंदमय अनुभूतियों के संदर्भ में सोच सकता है। जीवन की मूलभूत सुविधाएँ इनके लिए सपनों की तरह होती हैं। चंद्रसेन विराट के शब्दों में-

चाँद को देखा तो रोटी की याद जाग उठी,
पेट की भूख से राहत मिले, तो प्यार करू।

डॉ कुँवर बेचैन रोटी न मिल पाने का कारण स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

जरा सोचो कि मुँह तक रोटियाँ क्यों नहीं आ पायी
तुम्हारी ही कलाई में कहीं कुछ गड़बड़ी होगी।

समाज में निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई है। वह परिश्रम करता हैं परंतु इतना पैसा प्राप्त नहीं कर पाता कि परिवार का पालन-पोषण कर सके। आज उसमें और भिखारी में कोई अंतर

नहीं रह गया हैं। अंतर यही है कि यह श्रमजीवी पूंजीपतियों से आस लगाए बैठा है और भिखारियों के हाथ में कटोरा है। उनकी प्रसिद्ध ग़ज़ल के कतिपय सामाजिकता सम्पृक्त शेर हैं–

करो हमको न शर्मिंदा बढ़ों आगे कही बाबा,
हमारे पास ऑसू के सिवा कुछ भी नहीं बाबा।
कटोरा ही नहीं है हाथ में बस इतना अंतर है,
मगर बैठे जहॉं हो तुम, खड़े हम भी वहीं बाबा।

आज इन्सान में 'इन्सानियत' का अभाव लक्षित हो रहा है। समाज में व्याप्त धार्मिक वैमनस्य और सम्प्रदायवाद ने पारस्पारिक संघर्ष को बढ़ावा दिया है। 'नीरज' जैसे सशक्त ग़ज़लकार अनदेखा कैसे कर सकते हैं –

अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाय,
जिसमें इन्सान को इन्सान बनाया जाय।
जिसकी खुशबू से महक जाये पड़ोसी का भी घर,
फूल इस किस्म का हर सिमी खिलाया जाये।

हिंदी ग़ज़ल के एक प्रमुख हस्ताक्षर रामावतार त्यागी मानव मूल्यों के ह्रास पर चिंतित हैं आज समाज में ईमानदारी नहीं रही हैं। साहित्यकारों की स्थिति यह है कि रोटी के लिए वे अपनी प्रतीभा को बेचकर जीने के लिए विवश हैं –

मैंने बेचकर कलम को, रोटी खरीद ली जब,
तब से मेरा तआल्लुक, किसी काम से नहीं है।

सम्प्रति, समाज की मानसिकता संवेदनाहीन हो गई है अतएव मारपीट की आवाज़ चारों ओर से आ रही हैं। प्रत्येक दिन के समाचार पत्रों में किसी दुर्घटना, किसी हादसे, किसी अत्याचार, मारपीट, बलात्कार, खून की खबरें छप रही हैं। इसका कारण यह है कि समाज में इन्सानियत शेष नहीं बची है। समाज की इस भयावह स्थिति पर बालस्वरूप राही ने लिखा हैं–

हर तरफ एक ही आवाज़ है मारो-मारो,
ऐसा बेख़ौफ़ कोई कब से हुआ है यारो।
जिसको पढ़कर ये लोग, लोग अभी जिन्दा हैं,
कोई तो ऐसी खबर, लाओ कभी अख़बारों।

डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़ल में सामाजिक चेतना और शोषित मानवता का यथार्थांकन हुआ है। डॉ. रामप्रकाश 'पथिक' ने डॉ. कुँअर की ग़ज़ल की विशेषताओं के संदर्भ में लिखा हैं कि–"इनकी ग़ज़लों का कथ्य प्रेम में बहाये जानेवाले ऑसू नहीं हैं अपितु इनकी ग़ज़लों में पेट की उस अग्नि को कथ्य बनाया गया है, जो वर्तमान अर्थव्यवस्था में रोटी के लिए जुझते हुए मानव को सिर से पैर तक जलाती जा रही है।"[५] उनकी 'रामफल' नामक ग़ज़ल वर्तमान सामाजिक स्थिति पर करारा व्यंग्य है। एक गरीब व्यक्ति के जीवन की दासतान है। आधुनिक बोध और आम आदमी की पीड़ा है। –

कैसे बताएँ हम तुम्हें क्या-क्या हैं रामफल,
ऑसू के एक गॉव का मुखिया है रामफल।

मारा हैं जिसको रोज़ महाजन के ब्याज ने,
बेबस से एक गरीब का रूपया है रामफल।

कुँअर जी नारी समाज की दयनीय स्थिति-गति से व्यथित एवं बेचैन होते हैं। उनके अनुसार नारी केवल देह नहीं हैं। उसे भोग की वस्तु मान लेना मूर्खता है, अविवेक है, संवेदनहीनता है क्योंकि –

ये बीबी ही नहीं, माँ हैं, बहन हैं और बेटी हैं,
ये किसने कह दिया औरत तो बिस्तर का खिलौना है।

आज ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में दिन-ब-दिन प्रगति हो रही है। फलस्वरूप नारी शिक्षा को अहम् भूमिका दी गई। परंतु पुरूषों की मानसिकता में पत्नी अभी भी दासी बनी हुई है जब चाहे वह उसे डॉटता-फटकारता है, अपमान करता है, उसे हीन मानता है। अदम गोंडवी इसे अभिव्यक्ति देते हुए लिखते हैं –

औरत तुम्हारी पॉव की जूती की तरह है,
जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो।

आधुनिक युग में भी स्त्री न तो परिवार में सुरक्षित है न बाहर उसे डॉट-फटकार कर उसका यौन शोषण किया जाता है। कभी-कभी तो स्त्रियों को परिवार के लिए रोटी मुहैया करने के लिए अपना देह तक बेचना पड़ता है। नारी की इस त्रासदमय स्थिति पर अदम गोंडवी ने लिखा हैं-

कोई भी सिरफिरा धमका के जब चाहे ज़िना कर ले,
हमारा मुल्क इस माने में बुधुआ की लुगाई है।
रोटी कितनी महंगी है ये वो औरत बताएगी,
जिसने जिस्म गिरवी रख के ये किमत चुकाई है।

प्रतिदिन समाचार पत्र और दूरदर्शन पर आनेवाली खबरें बताती हैं कि दहेज की समस्या के कारण लड़कियॉ और स्त्रियॉ आत्महत्या कर रही हैं। अधिकतर ऐसे हादसे होते हैं कि उसे दहेज कम मिलने के कारण जला दिया जाता है या पिता के घर लौटा दिया जाता है। निश्चित ही ये समाज की स्वार्थी मनोवृत्ति का परिचायक है। इस प्रकार की घटनाओं से चिंतित होकर चंद्रसेन विराट ने लिखा हैं –

पाया नहीं दहेज, जला दी गई बहू,
हँसते हैं हैवान कि अपना देश यही।
फॉसी पर लटकी, खुद क्वॉरी कन्याएँ,
दे दहेज प्रतिदान की अपना देश यही हैं।

पुरूष वर्ग सदा से अपने आपको श्रेष्ठ समझता रहा है उसके समक्ष नारी गौण है। वह अपना यह अधिकार समझता है कि वह जब चाहे उसे प्रताड़ित कर सकता है। और नारी भी इस प्रकार के पुरूष से डरी और सहमी रहती है इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य में अभी भी वहशीपन है। वह इच्छा हो या न हो पुरूष के साथ यौन संबंध स्थापित करने के लिए विवश है इस संदर्भ में चंद्रसेन विराट ने लिखा है-

नर से बाधित हैं, प्रताड़ित, शोषित,
सहमी-सहमी डरी-डरी नारी।
आदमी अब भी है वहशी जिनमें,
एक हिरनी-सी है घिरी, नारी।

जिसको देखो वह बिछा देता है,
क्या चटाई है या दरी, नारी।

नारी समाज के यौन शोषण में पुलिस भी पीछे नहीं हैं। यह रक्षक ही भक्षक बन गये हैं। पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट लिखवाने आई लड़की सुरक्षित नहीं रह पाती। ज्ञानप्रकाश विवेक लड़कियों के मन में होने वाले पुलिसी भय को रेखांकित करते हुए लिखते हैं –

कुँआरी लड़कियाँ अपने घरों में जा दुबकी,
कि आज शहर में लष्कर निकलने वाला था।

जहीर कुरेशी जी ने द्रौपदी के मिथक के माध्यम से आज की नारी जिस स्थिति में जी रही है उसको शब्दबद्ध किया हैं। आज भी समाज में कौरवीं नीति है जो नारी को निर्वस्त्र करने में अपना पुरूषार्थ मानते हैं। महाभारत की द्रौपदी की रक्षा करने के लिए कृष्ण दौड़कर आये थे परंतु अब उसकी रक्षा करने के लिए कोई साहस नहीं जुटाता हैं–

आज भी द्रौपदी का चीर हरण,
हो रहा है भरी सभाओं में।
'द्रौपदी' नग्न होने को है,
इस सदी का किशन बिक गया है।
भीड़ के सामने धडल्ले से,
आज भी द्रौपदी प्रसंग हुआ।

कुरेशी जी ने नारी शोषण, नारी अत्याचारों को केन्द्र में रखकर ग़ज़लें लिखी साथ-साथ उन्होंने आज के बाज़ारवाद में विज्ञापनों के लिए देह प्रदर्शन करती हुई लड़कियों का भी चित्रण किया है। इसी के साथ भौतिकवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण एक पाश्चात्य विचारधारा देश में आ गई है। खाओ-पिओ मौज करो का संदेश घर-घर में पहुँच रहा है। फिल्मों के कारण युवतियों को नई-नई फैशन करने की इच्छा होती है। क्लब संस्कृति फल-फूल रही है। नारी के इस रूप को जहीर कुरेशी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–

बेटी को 'क्लब' से लौटती माँ का इंतजार है,
बारह बजा रहा है गजर, नींद के लिए।

दिन-प्रतिदिन के बढ़ते फैशन के में नारी के कपड़े कम होते जा रहे हैं। वह देह का खुला प्रदर्शन करने में लज्जा या संकोच नहीं रखती जहीर कुरेशी लिखते हैं –

अतिपारदर्शी वस्त्रों की फैशन परेड में,
हाथों से तन छिपाना जरूरी नहीं लगा।
ये कृपा कम नहीं है फैशन की,
नारी तन पर लिबास बाकी है।
फैशन के कारण तन से आवश्यक कपड़े गायब हैं,
लज्जा के कारण तन पर परिधान दिखाई देता है।

इस प्रकार की स्थिति से कुरेशी जी चिंतित होते हैं नारी का स्वतंत्र होना तो ठीक है परंतु उसका स्वच्छंद होना अनुशासनहीनता है,

उन्मुक्त होकर जीवन जीना भारतीय समाज में उचित नहीं माना जाता। धन के लालच में किशोरी युवतियाँ स्कूल कालेज से निकलकर घंटे दो घंटे पुरूष को खुश करती हैं-

अनैतिकता के चष्में को बदलकर देखना होगा,
गलत राहों पे वो कैसे गई, ये सोचना होगा।
बहुत उन्मुक्त होकर जिंदगी जीना भी जोखिम है,
नदी की धार का अनुशासन में बांधना होगा।

ग़ज़लकार कुरेशी जी का अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति स्वकथन अत्यंत मार्मिक है उन्हीं के शब्दों में "कविता मेरी उस तिलमिलाहट की अभिव्यक्ति है, जो वर्तमान जीवन-परिवेश में बिखरी हुई विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के कारण मुझमें बूंद-बूंद जमा होती रहती है। ऐसे ही जीवंत क्षणों का स्पंदन ये मेरी ग़ज़लें हैं।"[६] नारी विषयक गहन चिंतन से उभरी उनकी प्रस्तुत ग़ज़ल नारी जीवन की त्रासदियों का जीवंत दस्तावेज हैं जिसे कालजयी ग़ज़ल कही जा सकता है। -

क्या कहे अख़बार वालों से व्यथा औरत,
मौन शोषण की युगों लम्बी कथा औरत।
अपहरण कर ले गए 'रावण' कभी 'बिल्ला',
कल 'सिया' तो आज 'गीता चोपडा' औरत।
आज भी मामा या सौतेले पिता के हाथ,
बेच दी जाती है बूढ़े को 'युवा' औरत।

सामान्यतः नारी पुरूष वर्ग से दबी रहती है, समाज का उसपर अंकुश होता है लेकिन आज नारी सक्षमीकरण के कारण ऐसी लड़कियाँ भी दिखाई देती है जो ऐसे युवक से विवाह करना नहीं चाहती जो दहेज का भूखा हो। नारी के दुर्गा रूप को मधुप शर्मा ने इस प्रकार स्वर बद्ध किया है-

सुन दहेज की बात कहा बेटी ने उठकर,
नहीं चाहिए दुल्हे के मिस एक लुटेरा।
घरवालें, बाराती, सबके सब हैरत में,
रहे देखते लड़की का उत्साही चेहरा।
अगली सुबह मीडिया ने भरपूर सराहा,
लड़के के घर जा बैठा था पुलिसी पहरा।

समसामयिक परिस्थितियाँ ऐसी है कि किसान कर्ज में डूबे हुए हैं और के धोखा देने के कारण आत्महत्या के लिए विवश हो रहे हैं। या घुटते-घुटते प्रतिदिन मर रहा हैं। इस आदमी के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए रामेन्द्र त्रिपाठी ने लिखा है-

मरते हुए के पास कर्ज़-मर्ज़-फर्ज़ थे
कितने सगों की भीड़ थी इक आदमी के पास।

ग़ज़लकारों ने केवल सामाजिक समस्याएँ ही प्रस्तुत नहीं की हैं अपितु यह कामना भी की हैं कि यदि समाज की सामयिकता में परिवर्तन होता है और यह परिवर्तन स्वस्थ रूप में होता है तो समा खुख-शांति प्राप्त कर सकता हैं। सामाजिक मूल्य पुनः प्रतिष्ठापित हो सकते हैं। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि जब

तक देश का एक भी आदमी भूखा है तो प्रत्येक भारतीय गुनहगार हैं। कवि 'नीरज' की संवेदना भी कुछ ऐसी ही प्रतित होती हैं-

मेरे दुख दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा,
मैं रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाये।

स्पष्ट है कि देश की सद्द सामाजिक परिस्थिति को बदलने के लिए विद्रोहात्मक तेवर अपनाने पड़ेंगे। गूंगा और बहरा बनकर व्यष्टि-समष्टि का कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए दुष्यंत कुमार समाज को जागृत-प्रेरित करने के लिए लिखते हैं कि -

यहाँ तो सिर्फ गूंगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहाँ किस तरह जलसा हुआ होगा।

यथार्थतः हिंदी ग़ज़लकारों ने सामाजिक स्थितियों का गहराई अध्ययन किया है। समग्र ग़ज़लकारों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनकी काव्य चेतना का विकास प्रायः उनकी जीवन यात्रा की गति के अनुरूप ही हुआ है। यथार्थ का चित्रण रचनाधर्मिता का मूल उद्देश्य है इसी कारण इन ग़ज़लकारों ने सामाजिक जीवन के संपूर्ण यथार्थ को अपनी ग़ज़ल में मुखरित किया हैं। उनकी ग़ज़लें जीवन का गीत हैं जिनमें भावों की आर्द्रता, विचारों की तरलता और कल्पना की सप्रमाणता का ऐसा त्रिवेणी संगम है जो बार-बार चिंतन के लिए विवश करता है। इसी कारण हिंदी ग़ज़लों में समाज में व्याप्त विकृतियाँ, विसंगतियाँ, आम आदमी की पीड़ा, शोषण की वेदना और नारी जीवन का भयावह यथार्थ वर्णित हुआ है। ये ग़ज़लकार सामाजिकता के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण समाज की सही-सही तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। इनकी ग़ज़ल केवल रंजक नहीं हैं अपितु प्रत्येक व्यक्ति को सोचने के लिए विवश करती हैं। ये हिंदी साहित्य की ऐसी अमूल्य निधि है जो सदैव गौरवास्पद रहेगी।

संदर्भ संकेत :-

१. छायावादोत्तर हिंदी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - डॉ. कमला प्रसाद पाण्डेय - पृ. १६-२०
२. हाथ सलामत रहने दो - ग़ज़ल संग्रह -माधव कौशिक- भूमिका से
३. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा - ज्ञानप्रकाश विवेक - पृ. २१४
४. नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर - संतोष कुमार तिवारी - पृ. २५७
५. हिंदी ग़ज़लों का सौंदर्य शास्त्र - डॉ. रामप्रकाश 'पथिक' - पृ. ५६
६. एक टूकड़ा धूप - फ्लैप १ - जहीर कुरेशी